

राजस्थान की चित्रांकन परम्परा

डॉ. भावना झाला

सहायक आचार्य

चित्रकला विभाग, भूपाल नोबल्स विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.)

'आज जिस क्षेत्र को हम राजस्थान के नाम से जानते हैं, किसी जमाने में वह अन्तरवेद, मरूकान्तार, सौरवीर, गुर्जर तथा लाट आदि नामों से जाना जाता था। इसकी ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि अत्यन्त ही गौरवशाली रही हैं। यहाँ की भौगोलिक विभिन्नताओं और विषमताओं से भी कला शैलियों की विविधता ने सम्पूर्ण भारत देश ही नहीं अपितु विश्व के सम्पूर्ण परिक्रमा में अपनी विशिष्ट विशेषताओं के कारण अपना एक अतुल्य स्थान बना रखा है।'¹

यह वह मरूस्थलीय भू-भाग है जहाँ एक ओर चारों तरफ स्वर्ण के समान चमकीली बालू रेत के टीले हैं, तो दूसरी ओर अपने इतिहास के पन्ने की गाथा गाते विशालकाय स्थापत्यपूर्ण किले हैं। एक ओर जहाँ राजाओं की नगरी का इतिहास शौर्य, बलिदान और जौहर की गाथाओं से भरा पड़ा है वहीं इस मरूप्रदेश की कलात्मक छटा का विकास राजप्रासादों, प्राचीन स्मारकों, हवेलियों और भव्य देवालयों में अंकित है।

राजस्थान का अधिकांश भू-भाग मरूस्थलीय है। राजपूत शासकों ने मध्ययुगीन विदेशी आक्राताओं से बचने के लिये अपने नये साम्राज्य के गठन हेतु मरूभूमि को ही चुना। मरूस्थलीय भूमि का चुनाव राजपूतीराजाओं को रास आ गया और तत्कालीन राजपूताना की नींव पड़ी। राजपूताना शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग जार्ज थामस ने सन् 1800 ई. में किया। जबकि राजस्थान शब्द का सर्वप्रथम उल्लेख कर्नल जेम्स टॉड (1829 ई.) ने अपनी पुस्तक - 'एनल्स एण्ड एण्टीक्यूटिज ऑफ राजस्थान' में किया।

'राजस्थान में प्राचीनतम संस्कृति के पुरासाक्ष्य उपलब्ध हुए हैं जिनके माध्यम से इस मरू-भूमि के सांस्कृतिक महत्व को आंका जा सकता है। यहाँ पहाड़ों की कन्दराओं और महत्वपूर्ण नदियों के किनारे प्रस्तरकालीन संस्कृति के उपकरण बहुतायात में उपलब्ध हुए हैं। ईसा के तीन हजार वर्ष की ताम्रयुगीन संस्कृति का राजस्थान केन्द्र बिन्दु रहा है'²

राजस्थान में व्याप्त ये लघुचित्रशैलियाँ, जिन्हें संग्रह रूप में राजस्थानी कला कहा गया हैं मुख्यतः जैन शैली, अपभ्रंश शैली, मुगल शैली आदि के साथ ही स्थानीय भौगोलिक परिस्थितियों, आम-जनजीवन के आध्यात्मिक पहलू, धार्मिक आस्था-विश्वास तथा लोक कलाकारों के कलादर्शन आदि के समन्वय की ही देन थी।

लघुचित्रण की दृष्टि से राजस्थान प्रदेश सर्वाधिक समृद्ध रहा हैं। जिसमें 12वीं शताब्दी में कागज के आविष्कार ने ग्रन्थों के चित्रण में क्रान्ति ला दी थी और इसी कारण प्रदेश की पोथियों में लघुचित्रण परम्परा जिसमें काव्य और चित्रकला दोनों का अंकन सहजता और विस्तार से हो सका।

लघुचित्रण में प्रचलित विभिन्न तकनीकों का प्रादुर्भाव पश्चिम भारत की चित्रण पद्धति के अनुरूप ताड़ पत्रों के चित्रण कार्यों में ही प्राप्त होता हैं। इसके आरम्भिक स्वरूपों का उल्लेख 8वीं शताब्दी में राजस्थान की पृष्ठभूमि में लिखे कई ऐसे ग्रंथ मिले हैं जिनमें चित्रकला के संविधान का पता चलता हैं। चित्तौड़ में लिखा गया हरिभद्रसूरि कृत 'समराइच्चिकहा' तथा उद्योतसूरि कृत 'कुवलयमालाकहा' ग्रंथ इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं, जिनमें चित्र निर्माण की पद्धति रेखांकन, उत्तम रूपांकन, रंग संयोजन आदि का विस्तार से विवरण दिया गया हैं।³



**चंपावती कमल तालाब की ओर जाते हुये, 1550 ई. 8.5" x 6" चौरपंचाशिका,
संस्कार केंद्र, अहमदाबाद**

सर्वप्रथम तिथियुक्त पाण्डुलिपि 1060 ई. की हैं, जिसके एक पृष्ठ में कामदेव, श्रीदेवी तथा कई हाथी अंकित हैं। इस चित्र पर अजन्ता, ऐलोरा और जैन शैली की स्पष्ट छाप हैं। चौदहवीं सदी के उत्तरार्द्ध से लेकर डॉ. भावना झाला

पंद्रहवीं सदी के उत्तरार्द्ध तक चित्रित पाण्डुलिपियों कलाकाचार्यकथा (1366 ई.), महापुराण (1420 ई.), सुपासनाचरियम (1441 ई.), कल्पसूत्र (1465 ई.) तथा चौरपंचाशिका (1550 ई.) में दिखाई देती हैं। इन्हीं आरम्भिक चित्रित पाण्डुलिपियों से कालान्तर में राजपूत शैली का प्रादुर्भाव हुआ जो 17वीं-18वीं सदी से समृद्ध एवं विकसित होकर विश्व फलक पर समाहित हुई और उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक गैर भारतीय सांस्कृतिक आघातों के कारण पूर्णतया विनष्ट हो गई।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि मरुप्रदेश राजस्थान की भौगोलिक विषमताओं में घिरे रहने के बावजूद भी यहाँ अलौकिक और प्राकृतिक सौन्दर्य से परिपूर्ण इसकी सांस्कृतिक परम्परा अनवरत चली आ रही है। जिसकी शोधकर्ताओं द्वारा खोजबीन करने पर बहुत से पूरासाक्ष्यों यथा मूर्तिकलास्थापत्य, संगीत कला के उद्भव और विकास की पूर्व-पीठिका से सहज ही परिचित हुआ जा सकता है। भविष्य में राजस्थान की ये ऐतिहासिक संस्कृति और नये आयामों का खुलासा करेंगी।

राजस्थानी लघुचित्र शैली - भारतवर्ष में अति प्राचीनकाल में चित्रकला का विकास हो चुका था। सिन्धु सभ्यता में प्रस्तर खण्डों पर जो चित्रकारी हुई, वह लगभग पाँच हजार वर्ष का इतिहास है। वेदों के समय भी चित्रों का चलन था। अजन्ता की गुफाओं की चित्रकला को देखकर लगता है कि उस समय में चित्रकला अपनी चरम अवस्था पर थी। मुगलों के काल में तो चित्रकला लगभग प्रायः लुप्त हो गयी थी। आगे चलकर इस्लाम में अब उदारता आई तो मुस्लिम समाज कला की ओर बढ़ने लगा। चित्रकला की अनवरत धारा फिर फूट पड़ी और उसने मानव मन को सींच-सींच कर हरा-भरा कर दिया। मुगलीय दरबार या कहे मुगल शैली के कलाकार इधर-उधर भटकने लगे। अपना और अपने परिवार का पेट भरने के लिए भटकते रहे। यही वह समय था जब इन भटके हुये कलाकारों को मरुभूमि के रजवाड़े राजाओं ने इन्हें अपनी शरणदी जिसका परिणाम हमारी मरुप्रदेश की भूमि पर कला का विकास प्रारम्भ हुआ।

राजस्थानी लघुचित्र शैली का कलात्मक वैभव अद्वितीय रहा है। चित्रकला के इतिहास की शृंखला में अजन्ता की परम्परा को निभाने वाली राजस्थानी चित्र शैली का अपना निजी सांस्कृतिक परिवेश व इतिहास रहा है।

राजस्थानी शैली की उन्नति राजपूत शासकों के राज्य की उन्नति के साथ-साथ होती रही। कलाप्रेमी राजपूत राजाओं का राजस्थानी चित्र शैली के विकास तथा संवर्द्धन में विशेष योगदान रहा है। अतः प्राचीन

चित्रकला शैली की अजस्रधारा अनेक रियासतों की शैलियों को परिप्लावित करती हुई अपने चर्मोत्कर्ष पर पहुँच गयी।

अपनी पुस्तक 'भारतीय चित्रकला' के अन्तर्गत प्रसिद्ध कला समालोचक वाचस्पति गैरोला ने लिखा है 'भारतीय चित्रकला के इतिहास में राजस्थान के कलाकारों की देन सर्वथा अतुलनीय है। वास्तविकता तो यह है कि अपने प्राकृतिक निर्माण और मोहक वातावरण के कारण कला और काव्य की उद्भावना के लिए राजस्थान की धरती बड़ी ही उपयुक्त रही है। आज हम जिसको राजस्थान या राजपूत शैली के नाम से पुकारते हैं उसका निर्माण, दूसरी अधिकांश चित्र शैलियों की भाँति, न तो एक स्थान में हुआ और न ही उसके निर्माता कलाकार उंगलियों पर गिने जा सकते हैं। राजस्थान के जितने भी प्राचीन नगर और धार्मिक-सांस्कृतिक स्थल हैं, उन सभी में एक साथ असंख्य आश्रित कलाकारों एवं स्वतंत्र कलाकारों के द्वारा वर्षों तक निरन्तर कलाकृतियों का सृजन होता रहा है⁵

15वीं शती में गुजरात में जैन शैली पूरे चर्मोत्कर्ष पर थी। निकटवर्ती क्षेत्र होने के कारण मेवाड़ में जो चित्र शैली पनपी उनमें जैन शैली की पूरी छाप थी। अतः 16वीं शती मेवाड़ में चित्रकला का विकास हो चुका था। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि राजस्थानी चित्रकला का विकास लगभग 1550-1900 ई. तक रहा है।

यहाँ यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा कि राजस्थानी और मुगल कलम साथसाथ पल्लवित होते हुए भी अपने आप में अपनी निजता लिए हुए हैं, मुगल कला और राजपूत शैली में विशेष अन्तः यह भी है कि जहाँ मुगल बादशाहों ने अपने विलासितापूर्ण जीवन के आनन्द को उल्लस और भोग विलास के साथ जो व्यतीत किया है, का रूप हम उनके कलाकर्म में पाते हैं। अतः मुगल कला राजदरबार से संबंधित विषयों तक सीमित रही जबकि इसके विपरीत राजपूत शैली में कलाकारों ने अपनी धार्मिकता और जीवन की अनन्त साधना को अपना विषय मान कर चित्रांकित किया है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि मुगल शैली उसकी शारीरिक संरचना थी तो राजस्थानी शैली उस संरचना की आत्माभिव्यक्ति, जिसका कोई आकार-प्रकार नहीं है।

'मध्यकाल में शैव धर्म के उपरान्त वैष्णव धर्म का उत्थान प्रसार पाने लगा। 13वीं शती से अपनी माधुर्य भावना के कारण कृष्ण भक्ति आन्दोलन का सर्वोपरि स्थान रहा है जिससे मरुप्रदेश अछूता नहीं रहा है। यहाँ श्रीमद्भागवत एवं 12वीं शती में जयदेव कवि द्वारा रचित गीतगोविन्द ने सचित्र ग्रन्थों की परम्परा को

नवीन मोड़ दिया है। इसके अतिरिक्त चण्डीदास, विद्यापति, सूरदास तथा मीराकृत काव्य रचनाओं से प्रेरणा पाकर भी चित्रण कार्य किया गया।⁶

राजस्थान में जहाँ ईश्वरीय आराध्य दिव्यशक्ति का चित्रण देखने को मिलता है, वहीं राजस्थान की आमोद-प्रमोद, त्योहार, लोक संस्कृति एवं घटना प्रकरणों का भी चित्रण दृष्टिगत होता है। यहाँ दिव्य शक्तियों के साथ-साथ प्रेम के सूचक भगवान श्रीकृष्ण जीवन के विविध रूप हमें चित्रांकन में देखने को मिलते हैं।

राजस्थान में अलग-अलग रियासतों में अलग-अलग शैलियाँ पनपी और विकसित हुई है और उसी नाम से प्रसिद्धि भी अर्जित की है। मुगलों द्वारा निष्कासित कलाकार जिस राज्याश्रय में रहे वे अपनी कला का पूर्ण निखार उसी शैली में करते रहे। राजस्थान में उदयपुर, नाथद्वारा, जयपुर, कोटा-बूंदी, किशनगढ़, अलवर, जोधपुर, बीकानेर आदि शैलियाँ रियासती शैलियों के रूप में आज भी विश्व स्तर पर अपना अस्तित्व बनाए रखे हुए है।

संदर्भ ग्रंथ:

1. प्रेमचन्द्र गोस्वामी : राजस्थान : संस्कृति, कला एवं साहित्य, राजस्थानी हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2008, पृ. 1
2. जयसिंह नीरज : राजस्थानी चित्रकला और हिन्दी कृष्णकाव्य, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली-पटना, 1976, पृ. 10
3. जयसिंह नीरज : राजस्थानी चित्रकला, राजस्थानी हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2009, पृ. 15
4. ए. एल. दमामी : मेवाड़ की कला - संदर्भ तथा स्थिति, 'मेवाड़ कला' विशेषांक आकृति, (राज. ल. क. अ.), जन. - मार्च, 1998, पृ. 31-32
5. वाचस्पति गैरोला : भारतीय चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास, लोक भारतीय प्रकाशन, इलाहाबाद, 2009, पृ. 157
6. जयसिंह नीरज : राजस्थानी चित्रकला, राजस्थानी हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2009, पृ. 26